नानी की बातें और शहर के चबूतरे

कल ऑफिस से थोड़ा जल्दी फ्री हो गया तो नानी का हालचाल पूछने शाम को ननिहाल की तरफ स्टेयरिंग मोड़ दिया। नानी के साथ बैठना, पुराने उदयपुर की यादों में जीने जैसा है। जब नानी से यूँ ही बतिया रहा था तो सहसा वो पूछ बैठी कि आखिर मैं काम क्या करता हूँ ? मैं उन्हें सरल "मेवाड़ी" में अर्बन95 परियोजना के उद्देश्य समझाते हुए उदयपुर शहर को बच्चों के नज़रिए से बेहतर बनाने और उसके फायदे बताने लगा। जीवन के ८५ वसंत देख चुकी मेरी नानी ने अचानक मुझसे पूछा कि क्या तुम पुराने शहर के "चबूतरे" बचाने और नए शहर में उन्हें बनाने का काम कर रहे हो ?

फोटो- राहुल राठी

ये एक ऐसा सहज प्रश्न था, जिसने कुछ देर के लिए मुझे सोचने के लिए मजबूर कर दिया। पुराने शहर में लोग अपने वाहन की पार्किंग की जगह के लिए चबूतरे तोड़ रहे हैं। पुरानी गलियों में जहाँ जहाँ होटल या गेस्ट हाउस नहीं बने हैं, वहां छोटी चबूतरियां घरों के बाहर मौजूद है। कुछ चौक हैं और कुछ चबूतरे भी मौजूद हैं। अभी कुछ सालों पहले तक घर की महिलाएं बाहर मौजूद चबूतरियों पर शाम ढले बैठतीं और अपने दिन भर की थकान मिटातीं। उनके सामने गलियों और चौक में बच्चे खेलते। वे बातें भी करती और बच्चों का ख्याल भी रखतीं। जहाँ चबूतरियों पर आमतौर पर महिलाएं बैठी मिलतीं, वहीँ पुरुष चौक में मौजूद बड़े चबूतरों पर बैठे होते। घुटने चलते बच्चों से लेकर १०-१२ साल तक के बच्चे उनकी नज़र के सामने खेलते रहते।

शाम को जहाँ ये चौक दिन-भर घर और दुकान में बंद रहने वाले लोगों को शाम को अपने पड़ोस के लोगों से मिलने जुलने और बच्चों के साथ वक़्त बिताने का मौका देते थे, वहीँ सुबह से दोपहर तक यही चबूतरे और चबूतरियां राह चलते लोगों के लिए थोड़ी देर रुक कर आराम करने का ज़रिया बनते। कोई महिला जब अपने बच्चे को गोदी में उठाये बाज़ार को निकलती तो थोड़ी सी थकान होने पर वो तत्काल किसी भी घर के बाहर मौजूद चबूतरी पर बैठ जाती। इसके लिए उसे किसी से अनुमति लेने की ज़रूरत नहीं ! आप किसी भी धर्म- समाज से हो; चबूतरे-चबूतरियां हमेशा आपके लिए खुले हैं। आप वहां बैठ सकते हैं। पास में ही मौजूद "प्याऊ" से पानी पी सकते हैं। जो आस पास प्याऊ न हो तो जिस घर की चबूतरी पर बैठे हैं, वहीँ के दरवाज़े की सांकल बजा दीजिये। आपको और आपके बच्चे को पानी पिलाने को उस घर की मुखिया अपना "पुण्य" समझती है।

फोटो- प्रशांत

अगर कोई महिला अपने बच्चों के साथ गुज़र रही है और किसी परिचित ने अपनी खिड़की से उसे गुज़रते हुए देख लिया तो वो परिचित वहीँ से जोर से पुकारते हैं "आवो थोड़ो रेम्बो ले लो" (आइये, थोडा आराम कर लीजिये), तो इसका सीधा सा मतलब हैं कि आप हमारे घर के बाहर चबूतरी पर बैठिये, हम चाय-पानी लेकर आते हैं। गुज़रती महिला भी इस मनुहार को अस्वीकार नहीं करती और चबूतरे पर बैठ जाती। हमेशा चबूतरी के साथ वाली दीवार की अंदरखाने एक पानी की मटकी ज़रूर होती थी।

खैर, इन्ही ख्यालों से गुज़रते हुए अचानक चेतना लौटी और मैं नानी से पूछ बैठा, "नानी अब ये चबूतरे नहीं है तो क्या हुआ, पार्क तो है" नानी मुस्कुरा उठी। बोली- बेटा, पार्क का अपना महत्त्व है। वहां आप एक दूजे से मिल सकते हैं, घूम सकते हैं। बच्चों के साथ वक़्त बिता सकते हैं। पर पार्क तक जाने के लिए आपको गुज़रना तो गलियों से ही पड़ेगा। जो आपका बच्चा या आप थक गए, तो बैठोगे कहाँ ? आजकल गली में बैठने की जगह है क्या ? ये चबूतरे-चबूतरियां हमेशा आपको एक बैठने की जगह देती हैं।"

फोटो- हिम्मत सिंह

नानी बात तो ठीक ही कह रही थी। मैं शहर के नए हिस्सों की गलियों को याद करते हुए अपनी स्मृति में "चबूतरे" खोजने लगा। दिमाग के घोड़े प्रतापनगर से हिरणमगरी- गोवर्धन विलास होते हुए सज्जन नगर- नवरत्न काम्प्लेक्स तक आ गए। आश्चर्य, नए शहर में तो एक भी चबूतरा-चबूतरी नहीं है। जितने भी घर-बंगले बने हैं, वहां कहीं भी बाहर "चबूतरी" के लिए जगह नहीं है। जैसे अब लोग पैदल ही नहीं चलते !! क्या सच में "आधुनिक" होते होते हम अपनी जड़ों से कटते जा रहे हैं ? मुझे ऐसे ध्यानमग्न बैठे देख नानी को मस्ती सूझी। कहने लगी, "तेरी मम्मी को इतना ज्यादा बातूनी होने का शौक इन्ही चबूतरियों की देन है। और जो तू नानेरे *(ननिहाल)* के इस चौक में इतना दौड़ा न होता तो आज देश-देशांतर न घूम रहा होता" मैं हंस पड़ा।

किस्सागोई के ठिकाने रहे हैं चबूतरे: राजस्थान के हर पुराने शहर, फिर चाहे उदयपुर हो या बीकानेर, जोधपुर हो या बूंदी-झालावाड; चबूतरे हर जगह मौजूद रहे हैं। उदयपुर में जहाँ इन्हें चबूतरा या चौतरा कहा जाता है, वहीँ बीकानेर में ये "पाटिये" हो जाते हैं। वहीँ प्रतापगढ़- बांसवाडा पहुँचते पहुँचते ये "सोतरा" हो जाते हैं। नाम बदले, पर न काम बदला न इन पर बैठने वाले लोगों की बातें। पूरे मोहल्ले की हर छोटी- बड़ी बात को "वायरल" करने में इन चबूतरों का अच्छा ख़ासा योगदान रहा है। तब सोश्यल मीडिया का ज़माना नहीं था, सो इन्सान सोश्यल होने के लिए चबूतरे का ही इस्तेमाल करते। आम तौर पर चबूतरे किसी पेड़ के चारों तरफ ज़मीन से ३-४ फीट ऊपर टेबलनुमा बैठक होते। दिन भर की हाड़ -तोड़ मेहनत के बाद मोहल्ले के आस-पड़ोस के घरों के सदस्य चबूतरों पर आ जमते। पुरुष सदस्य इन्ही चबूतरों पर बैठे बैठे दिन भर के व्यापार की बातें करते। किस घर में क्या चल रहा है- से लेकर मेहमान, शादी, न्योते आदि काम इन्ही चबूतरों पर हो जाते। सामाजिक कार्यक्रमों की रूपरेखा, बच्चों की पढ़ाई जैसे मुद्दे तक इसमें शामिल रहते। देर शाम तक पुरुष इन चबूतरों पर जमे रहते। चाय की चुस्कियों के साथ गुफ्तगू चलती रहती। राजनीति, नेता-पार्टी से लेकर हल्की-फुल्की विचारधाराओं की बहस के अड्डे रहे हैं ये चबूतरे।

पर जैसे-जैसे परिवार एकल होते चले गए, लोगों ने शहर की पुरानी संकड़ी गलियों से निकलकर बाहरी नए शहर में घर बसाने शुरू कर दिए। आधुनिकता में ये चबूतरे कहीं गुम होते चले गए। लोगों ने खुद को चार-दीवारी में बंद सा कर लिया। बच्चे भी टीवी- मोबाइल में खोये और जैसे दुनिया बंद सी हो गयी। पुराने शहर में लोग कई जगहों पर आज भी चबूतरों पर आ जमते हैं पर अब बातें कम और सोश्यल मीडिया में फ़ैल रही ख़बरों को स्क्रीन पर देखना आम हो चला है।

फोटो- हिम्मत सिंह

पुरानी परम्पराओं को सहेजना बहुत ज़रूरी: आज जब हम फुटपाथ और उस पर "रेस्टिंग स्पेस या आराम करने की जगह" डिजाइन करने की बात करते हैं, तो चबूतरी जिंदा हो जाती है। हम स्थानीय शहरी निकायों के जिम्मे इस काम को डाल देते हैं, किन्तु पुराने ज़माने में यह साझी विरासत का हिस्सा था।

फोटो- राहुल सिणगार

लोग "आपनायत" के चलते अपने घर के बाहर चबूतरी ज़रूर डिजाइन करवाते थे। हर बाहरी दीवार के साथ चबूतरी ज़रूर होती तो हर चौक में मौजूद किसी पेड़ के साथ लगता चबूतरा ज़रूर बनता।

समुदायों और स्थानीय निकायों को चाहिए कि आधुनिक निर्माण के साथ-साथ इन ढांचों को भी सहेजे। इन्हें ऐसा नया स्वरुप प्रदान करे कि लोग फिर से बाहर आकर इनका उपयोग शुरू करे। शहर में मौजूदा चौक में पार्किंग के स्थान पर बच्चों के खेलने के लिए आधुनिक स्वरुप दिया जाए तो बच्चे भी बाहर सुरक्षित रूप से खेल सकेंगे, वहीँ उनकी निगरानी के लिए महिलाएं भी बाहर बैठना शुरू करेंगी। मेरी नानी कहती है, माएं भी बच्चों के मोबाइल के बढ़ते उपयोग से परेशान है, पर उनके पास दूसरा कोई माध्यम नहीं, जहाँ वे बच्चों के साथ व्यस्त हो सके। अगर मोहल्लों के चौक- चबूतरे फिर से जिंदा होंगे तो बच्चे दूसरे बच्चों के साथ बाहर ज़रूर खेलेंगे और माँ-बच्चे; दोनों का मोबाइल पर कम समय बीतेगा।

अब नानी इतनी बूढी होकर जब इस साधारण से मसले को समझ सकती हैं तो आधुनिकता की चादर ओढ़े हम लोग इस छोटी सी बात को क्यों नहीं समझ सकते। आधुनिक होना और नए गैजेट्स के साथ आगे बढ़ना ज़रूरी है पर जड़ों से जुड़े रहते हुए पुरानी-अच्छी परम्पराओं को बचाना-सहेजना भी हमारी ही जिम्मेदारी है। अब देखना ये है कि हम अपनी इस साधारण सी जिम्मेदारी को कब समझते हैं !! क्योंकि नानी तो ये बातें बताने "अमर" होकर आई नहीं !!!

चलते चलते: जब बात चौक-चबूतरों की ही चली तो दरबार *(राजशाही)* के ज़माने का किस्सा नानी ने सुनाया। अंग्रेज़ों के राजा *(किंग जार्ज पंचम)* दिल्ली दरबार लगा रहे थे। देश के सारे राजे-रजवाड़े आमंत्रित किये गए थे। महाराणा फतहसिंह वहां मेवाड़ के प्रतिनिधि के तौर पर जाने वाले थे। इसी सन्दर्भ में महाराणा ने राव- उमरावों के साथ दरबार बुलाया। दरबार में हाज़िरी देने आमेट राव साहब *(आमेट जागीर के मुखिया)* अपनी हवेली से घोड़े पर सवार हो निकले। राह में चबूतरियों पर बतियाती महिलाओं ने ताना मारा- "एकलिंग *(मेवाड़ का प्रसिद्द शिव मंदिर)* को झुकने वाले शीश अब दिल्ली जाकर गोरों के सामने झुकेंगे।" आमेट राव को बात चुभ गयी। उन्होंने महाराणा को जाकर ज्यों की त्यों सुनी बात कही। महाराणा ने दिल्ली जाने की सोच को त्याग दिया। जब दिल्ली दरबार लगा तो अकेली मेवाड़ महाराणा की कुर्सी खाली थी। सारे राजे-रजवाड़े किंग जार्ज पंचम के सम्मान में झुके किन्तु मेवाड़ ने झुकने से इनकार कर दिया। मेवाड़ का सम्मान चबूतरी पर बैठी महिलाओं ने बचा लिया।

(आलेख: ओम)